International Journal of Multidisciplinary Horizon

ISSN: **3049-2017**
IJMH 2026; 3(4): 32-35
© 2026 IJMH
www.themultijournal.com

Received: 24-06-2026
Accepted: 13-07-2026
Publish : 14-07-2026

प्रो हीरालाल शर्मा
विभागाध्यक्ष,हिंदी विभाग,
शासकीय कला एवं वाणिज्य पी जी-महविद्यालय बलौदाबाजार, छ, ग,

डा रीता यादव
सहा प्राध्यापक,हिंदी विभाग,
शासकीय कला एवं वाणिज्य पी जी-महविद्यालय बलौदाबाजार, छ, ग,

डॉ राजेन्द्र कुमार वर्मा
सहा प्राध्यापक,हिंदी विभाग,
शासकीय कला एवं वाणिज्य पी जी-महविद्यालय बलौदाबाजार,छ, ग,

Correspondence:
प्रो हीरालाल शर्मा
विभागाध्यक्ष,हिंदी विभाग,
शासकीय कला एवं वाणिज्य पी जी-महविद्यालय बलौदाबाजार, छ, ग,

भारतीय ज्ञान परंपरा में आस्तिक दर्शन के प्रमाणों का विवेचन

प्रो हीरालाल शर्मा, डा रीता यादव, डॉ राजेन्द्र कुमार वर्मा

प्रस्तावना –

"प्रमाण के अभाव में किसी भी वस्तु का यथार्थ ज्ञान संभव नहीं है इसलिए समस्त शास्त्रों में प्रमाण को प्राणतुल्य महत्व प्रदान किया गया है।" सृष्टि के आदि काल से ही प्रमाण का महत्व मानव जीवन में विद्यमान रहा है । जब कोई जीव इस संसार में जन्म ग्रहण करता है, तभी से वह अपने आसपास की वस्तुओं का प्रत्यक्ष अनुभव करने लगता है । इस प्रकार जन्म के साथ ही प्रमाण की आवश्यकता और उपयोगिता का आरम्भ हो जाता है । वस्तुतः इस चराचर जगत् के समस्त दृश्य-अदृश्य, स्थूल-सूक्ष्म, ज्ञेय-अज्ञेय तथा भूत, वर्तमान और भविष्य से सम्बद्ध समस्त तत्त्वों का ज्ञान प्रमाणों के माध्यम से ही प्राप्त होता है। ईश्वर, जीव, प्रकृति, धर्म-अधर्म, विद्या-अविद्या, बन्धन-मोक्ष, नित्य-अनित्य, न्याय-अन्याय, वर्ण एवं आश्रम व्यवस्था जैसे गूढ़ विषयों की सही समझ भी प्रमाणों पर ही आधारित है । ज्ञान, विज्ञान, कला, शास्त्र और व्यवहार-सभी का मूलाधार प्रमाण ही है। इसी कारण राग, द्वेष और मोह से रहित, लोककल्याण के लिए समर्पित ऋषियों ने प्रतिपादित किया है कि वस्तुओं के वास्तविक स्वरूप का निर्णय उनके लक्षणों और प्रमाणों के आधार पर ही किया जाना चाहिए। अर्थात् किसी भी विषय की सत्यता को जानने के लिए प्रमाण का सहारा लेना अनिवार्य है ।

वर्तमान युग में पश्चिमी संस्कृति के बढ़ते प्रभाव के कारण वेदों और अन्य सत्यशास्त्रों में निहित दिव्य ज्ञान की उपेक्षा होती दिखाई दे रही है । भारतीय ऋषियों और मनीषियों की अमूल्य वाणी भी अनेक स्तरों पर विस्मृत की जा रही है । ऐसे समय में महान दार्शनिक महर्षि वात्स्यायन का यह कथन अत्यन्त प्रासंगिक प्रतीत होता है कि प्रत्यक्ष आदि प्रमाणों के आधार पर वस्तुओं का परीक्षण और सत्यापन करना ही न्याय है । न्याय दर्शन में प्रमाण, प्रमेय, प्रमाता और प्रमिति के परस्पर सम्बन्ध का अत्यन्त सूक्ष्म एवं गम्भीर विवेचन किया गया है, जो मानव को संकीर्णता, दुर्बलता और अज्ञान से ऊपर उठाकर उदारता, श्रेष्ठता तथा आध्यात्मिक उन्नति की ओर अग्रसर करता है । इस सन्दर्भ में वेद, दर्शन तथा अन्य आर्ष ग्रन्थों का विशेष महत्व है। ये ग्रन्थ पतित और अज्ञानग्रस्त मनुष्यों को देवत्व तथा अमरत्व की दिशा में प्रेरित करते हैं । चूँकि इनमें ईश्वर की सत्ता, उसकी प्राप्ति के साधन तथा मानव जीवन के परम लक्ष्य का निरूपण किया गया है, इसलिए इन्हें आस्तिक ग्रन्थ कहा जाता है ।

इस शोधपत्र का उद्देश्य यह है कि भविष्य में आस्तिक विचारधारा के साधकों और मुमुक्षुओं को एक सुदृढ़ वैचारिक दिशा प्राप्त हो । वे प्रत्यक्ष आदि प्रमाणों के आधार पर वेद और आस्तिक दर्शनों के सिद्धान्तों में दृढ़ श्रद्धा स्थापित कर सकें तथा इहलोक और परलोक दोनों में अभ्युदय एवं निःश्रेयस की प्राप्ति कर सकें। साथ ही वे अविद्या के अन्धकारमय गर्त में गिरने के स्थान पर विद्या के रमणीय उद्यान में प्रवेश कर जीवनदायी ज्ञानरूपी वायु का सेवन करें तथा वैदिक एवं आस्तिक चिन्तन से अनुप्राणित होकर अपने जीवन को सार्थक बना सकें। यही इस लेख का प्रमुख प्रयोजन है ।

प्रमाण का स्वरूप एवं प्रत्यक्ष प्रमाण का विवेचन -

आत्मा आदि प्रमेय पदार्थों का यथार्थ ज्ञान लक्षण और प्रमाण के अभाव में प्राप्त नहीं किया जा सकता। इस जगत् में सूक्ष्मतम अणु-परमाणु से लेकर विशाल सूर्य आदि दृश्यमान पदार्थों तथा आत्मा जैसे अतीन्द्रिय तत्त्वों का ज्ञान भी प्रमाणों के माध्यम से ही संभव होता है । सामान्य व्यक्ति हो अथवा विद्वान्, सभी वस्तुओं के वास्तविक स्वरूप को जानने के लिए किसी न किसी प्रमाण का आश्रय लेते हैं।

इसी आधार पर प्रमाण की व्युत्पत्ति की गई है- **"प्रमीयतेऽनेन इति प्रमाणम्"**, अर्थात् जिसके द्वारा किसी वस्तु का यथार्थ ज्ञान प्राप्त हो, उसे प्रमाण कहा जाता है। वास्तव में कोई भी कार्य बिना प्रमाण के सिद्ध नहीं हो सकता। इसलिए प्रत्यक्ष, अनुमान आदि प्रमाणों की अनिवार्यता स्वतः सिद्ध हो जाती है। भारतीय दर्शनों में प्रमाणों के स्वरूप और संख्या के विषय में मतभेद पाया जाता है। कुछ दर्शनों ने तीन प्रमाण स्वीकार किए हैं, तो कुछ ने चार या उससे अधिक। तथापि प्रत्यक्ष, अनुमान और शब्द- ये तीन प्रमाण सभी वैदिक दर्शनों में समान रूप से मान्य हैं।

न्याय दर्शन के प्रथम अध्याय के प्रथम आह्निक में प्रमाणों का वर्गीकरण करते हुए चार प्रमुख प्रमाणों का उल्लेख किया गया है- प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान और शब्द। इनमें प्रत्यक्ष प्रमाण का विशेष महत्व माना गया है। घ्राण, रसना, चक्षु, त्वचा और श्रोत्र- ये पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ हैं। जब इन इन्द्रियों का उनके-अपने विषयों-गन्ध, रस, रूप, स्पर्श और शब्द-से सन्निकर्ष होता है, तब जो ज्ञान उत्पन्न होता है, उसे प्रत्यक्ष ज्ञान कहा जाता है। न्याय के अनुसार प्रत्यक्ष ज्ञान में तीन विशेषताएँ अनिवार्य हैं- **"अव्यपदेश्यम् अव्यभिचारि और व्यवसायात्मकम्"** इन गुणों से युक्त ज्ञान ही वास्तविक प्रत्यक्ष कहलाता है।

अव्यपदेश्य-

अव्यपदेश्य का अर्थ है कि प्रत्यक्ष ज्ञान किसी अन्य व्यक्ति के कथन या शब्द पर आधारित न होकर स्वयं के अनुभव से प्राप्त होना चाहिए। उदाहरणार्थ, यदि कोई व्यक्ति कहे कि अंगूर खट्टे होते हैं, तो यह सुनकर प्राप्त ज्ञान प्रत्यक्ष नहीं बल्कि शाब्दिक ज्ञान होगा। किन्तु जब कोई स्वयं अंगूर का स्वाद लेकर उसके खट्टे या मीठे होने का अनुभव करता है, तब उत्पन्न ज्ञान प्रत्यक्ष कहलाता है। यही अव्यपदेश्य ज्ञान है।

अव्यभिचारी-

प्रत्यक्ष ज्ञान ऐसा होना चाहिए जो बाद में मिथ्या सिद्ध न हो। अनेक बार व्यक्ति को ऐसा ज्ञान प्राप्त होता है जो आगे चलकर असत्य सिद्ध हो जाता है। उदाहरण के लिए, प्रातःकाल किसी मार्ग पर चलते हुए व्यक्ति को अंधकार में रस्सी सर्प प्रतीत हो सकती है। सूर्य का प्रकाश होने पर उसे ज्ञात होता है कि वह सर्प नहीं, बल्कि रस्सी थी। ऐसा परिवर्तित होने वाला ज्ञान व्यभिचारी कहलाता है। चूँकि यह स्थिर एवं यथार्थ नहीं होता, इसलिए इसे प्रत्यक्ष ज्ञान की श्रेणी में स्थान नहीं दिया जाता। अतः प्रत्यक्ष ज्ञान का अव्यभिचारी होना आवश्यक है।

व्यवसायात्मक-

प्रत्यक्ष ज्ञान निश्चयात्मक होना चाहिए, संशययुक्त नहीं। उदाहरणस्वरूप, ग्रीष्म ऋतु में दूर से देखने पर रेत पर पड़ने वाली सूर्य-किरणें जल के समान चमकती प्रतीत होती हैं। यदि कोई व्यक्ति उसे जल समझकर वहाँ पहुँचे और पाए कि वहाँ वास्तव में जल नहीं है, तो बाद में वैसी ही स्थिति देखकर उसके मन में संशय उत्पन्न हो सकता है कि जो दिखाई दे रहा है वह जल है या केवल रेत की चमक। ऐसा संदेहात्मक ज्ञान प्रत्यक्ष नहीं माना जाता। इसलिए प्रत्यक्ष ज्ञान में स्पष्टता और निश्चितता का होना अनिवार्य है। इस प्रकार जिस ज्ञान में अव्यपदेश्यता, अव्यभिचारिता और निश्चयात्मकता- ये तीनों गुण विद्यमान हों, वही न्याय दर्शन के अनुसार शुद्ध एवं मान्य प्रत्यक्ष ज्ञान कहलाता है।

अनुमान, उपमान एवं शब्द प्रमाण-

"**प्रत्यक्षानुमानोपमानशब्दाः प्रमाणानि**[1] "।

"**इन्द्रियार्थसन्निकर्षोत्पन्नं ज्ञानमव्यपदेश्यमव्यभिरिव्यवसासात्मकं प्रत्यक्षम्"**[2]।

अनुमान प्रमाण-

"**अनुमीयते इति अनुमानम्**" अर्थात् जिसके माध्यम से किसी अप्रत्यक्ष अथवा अज्ञात तथ्य का ज्ञान पूर्व से ज्ञात तथ्यों के आधार पर किया जाए, उसे अनुमान प्रमाण कहा जाता है। दूसरे शब्दों में, जब किसी ज्ञात कारण या लक्षण के आधार पर किसी अन्य वस्तु या सत्य का बोध होता है, तब वह ज्ञान अनुमान कहलाता है। उदाहरण के लिए, यह सर्वविदित तथ्य है कि जहाँ धुआँ होता है, वहाँ अग्नि अवश्य होती है। धूम और अग्नि के इस सार्वत्रिक सम्बन्ध का पूर्व अनुभव होने के कारण जब किसी स्थान पर केवल धूम दिखाई देता है, तब वहाँ अग्नि की उपस्थिति का ज्ञान हो जाता है। धूम यहाँ लिङ्ग (चिह्न) तथा अग्नि लिङ्गी (जिसका अनुमान किया जाता है) है। इस प्रकार धूम के आधार पर अग्नि का ज्ञान अनुमान प्रमाण का उदाहरण है।

इसी प्रकार वेदों में वर्णित अनेक मन्त्रों के आधार पर ईश्वर की सत्ता का भी अनुमान किया जाता है। वेद यह प्रतिपादित करते हैं कि ईश्वर सम्पूर्ण जगत् में व्याप्त है तथा प्रत्येक पदार्थ में उसकी सत्ता विद्यमान है। यजुर्वेद के विभिन्न मन्त्रों में ईश्वर की सर्वव्यापकता का वर्णन मिलता है। अतः उन वैदिक वचनों के आधार पर ईश्वर के अस्तित्व और व्यापक स्वरूप का ज्ञान अनुमान प्रमाण द्वारा सिद्ध होता है।

उपमान प्रमाण-

उपमान प्रमाण भी ईश्वर तथा अन्य दार्शनिक तत्त्वों के ज्ञान का एक महत्वपूर्ण साधन है। किसी प्रसिद्ध वस्तु के गुणों या समानता के आधार पर किसी अन्य अपेक्षाकृत अपरिचित वस्तु का ज्ञान प्राप्त करना उपमान कहलाता है। अर्थात् दो वस्तुओं के मध्य विद्यमान सादृश्य के आधार पर साध्य वस्तु के स्वरूप का बोध होना ही उपमान प्रमाण है। न्याय परम्परा में इसका प्रसिद्ध उदाहरण "**यथा गौस्तथा गवयः**" है। अर्थात् गाय के साथ समानता के आधार पर नीलगाय (गवय) का ज्ञान प्राप्त होना। यहाँ ज्ञात वस्तु गाय के गुणों के माध्यम से अज्ञात वस्तु गवय का बोध कराया जाता है। इसी प्रकार वेदों में ईश्वर के स्वरूप को समझाने के लिए अनेक उपमाएँ दी गई हैं। कहीं उसे सूर्य के समान प्रकाशमान, तेजस्वी तथा अज्ञानरूपी अन्धकार का नाश करने वाला बताया गया है। इन

उपमानों के माध्यम से यह स्पष्ट किया गया है कि ईश्वर ज्ञानस्वरूप, प्रकाशमय तथा अविद्या से सर्वथा रहित है । उसके वास्तविक स्वरूप का ज्ञान ही मुक्ति का साधन है, क्योंकि ईश्वर को जाने बिना मोक्ष की प्राप्ति संभव नहीं मानी गई है । इस प्रकार वैदिक मन्त्रों में प्रयुक्त उपमाओं के आधार पर ईश्वर के स्वरूप का ज्ञान उपमान प्रमाण से प्राप्त होता है ।

शब्दप्रमाण -

भारतीय दर्शन में शब्द प्रमाण को अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान प्रदान किया गया है। न्याय दर्शन के प्रवर्तक महर्षि गौतम शब्द प्रमाण का लक्षण करते हुए कहते हैं- **आप्तोपदेशः शब्दः**[3]। अर्थात् किसी विश्वसनीय, सत्यनिष्ठ एवं यथार्थदर्शी पुरुष के उपदेश अथवा कथन को शब्द प्रमाण कहा जाता है । यहाँ 'आप्त' उस व्यक्ति को कहा जाता है जो सत्य का प्रत्यक्ष ज्ञान रखता हो, निष्पक्ष हो तथा लोककल्याण की भावना से युक्त होकर सत्य का उपदेश करता हो। ऐसे आप्त पुरुष के वचनों से प्राप्त ज्ञान शब्द प्रमाण कहलाता है । सरल शब्दों में कहा जाए तो लोकहित की भावना से सत्य का प्रतिपादन करने वाले विश्वसनीय व्यक्ति अथवा ऋषि-मुनियों के कथनों से जो ज्ञान प्राप्त होता है, वही शब्द प्रमाण है ।

अथ तत्पूर्वकं त्रिविधमनुमानं पूर्ववच्छेष सामान्यतोदृष्टं च[4]।
ईशा वास्यमिद सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत्।
तेन त्यक्तेन भुजिथाः मागृधः कस्यस्विद्धनम्[5] ॥
प्रसिध्दसाधर्म्यात् साध्यसाधनमुपमानम् न्याय[6]।
वेदाहमेतं पुरुषं महान्तमादित्यवर्णं तमसः परस्तात् ।
तमेव विदित्वातिमृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय[7] ॥

आप्त एवं शब्द प्रमाण का स्वरूप-

भारतीय दर्शन में 'आप्त' उस पुरुष को कहा जाता है जिसने किसी पदार्थ अथवा तत्त्व का यथार्थ स्वरूप प्रत्यक्ष रूप से जान लिया हो। साक्षात्कार का तात्पर्य है वस्तु को जैसी वह वास्तव में है, उसी रूप में निश्चित रूप से समझना । जब ऐसा तत्त्वदर्शी व्यक्ति अपने अनुभव एवं ज्ञान को दूसरों तक पहुँचाने के उद्देश्य से उसका उपदेश करता है, तब वह उपदेष्टा कहलाता है तथा उसके द्वारा किया गया कथन शब्द प्रमाण की श्रेणी में आता है ।

योगदर्शन के भाष्यकार महर्षि व्यास ने भी शब्द प्रमाण की इसी प्रकार व्याख्या की है। उनके अनुसार आप्त पुरुष जिस पदार्थ का ज्ञान प्रत्यक्ष अथवा अनुमान आदि प्रमाणों के माध्यम से प्राप्त करता है, उसी का उपदेश जब वह दूसरों को देता है, तब वह उपदेश श्रोताओं के लिए शब्द प्रमाण बन जाता है ।

महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती ने भी शब्द प्रमाण का स्वरूप स्पष्ट करते हुए कहा है कि पूर्ण विद्वान्, धर्मनिष्ठ एवं सत्यवादी आप्त पुरुषों के उपदेश तथा वेद शब्द प्रमाण के अन्तर्गत आते हैं । उनके अनुसार- "**आप्तोक्त वाक्यं प्रमाणम्**", अर्थात् जो व्यक्ति किसी विषय का यथार्थ ज्ञान प्राप्त करके सत्य कथन की भावना से उसका उपदेश करता है, उसके द्वारा कहा गया वचन प्रमाण माना जाता है । ऐसे व्यक्ति का कथन भ्रम, पक्षपात और असत्य से रहित होने के कारण ज्ञान का विश्वसनीय साधन बन जाता है ।

समस्त वैदिक मन्त्र शब्द प्रमाण के अन्तर्गत स्वीकार किए जाते हैं, क्योंकि वेदों को परम आप्त, सर्वज्ञ एवं सर्वशक्तिमान परमात्मा की दिव्य वाणी माना गया है । इसी कारण वेद मानव मात्र के लिए सर्वोच्च प्रमाण के रूप में प्रतिष्ठित हैं । वेदों में जीवन के विविध पक्षों से सम्बन्धित ऐसे अनेक उपदेश प्राप्त होते हैं जो मनुष्य को सदाचार, उन्नति और कल्याण के मार्ग पर अग्रसर करते हैं । उदाहरणस्वरूप, वेद मनुष्य को प्रेरणा देते हैं कि वह श्रेष्ठ कर्मों का पालन करते हुए शतायु जीवन की कामना करे । साथ ही यह भी उपदेश दिया गया है कि मनुष्य अपनी समस्त इन्द्रियों का सदुपयोग करते हुए सौ वर्षों तक शुभ का दर्शन करे, कल्याणकारी वचनों को सुने, सत्य का भाषण करे, स्वस्थ जीवन व्यतीत करे तथा निरन्तर प्रगति की ओर अग्रसर रहे । इस प्रकार के अनेक जीवनोपयोगी निर्देश वेदों में उपलब्ध होते हैं, जो शब्द प्रमाण की महत्ता को सिद्ध करते हैं । अतः वेदों का अध्ययन-अध्यापन, श्रवण तथा प्रचार-प्रसार प्रत्येक मनुष्य का परम कर्तव्य और धर्म माना गया है । महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती ने भी इसी तथ्य पर बल देते हुए वेदज्ञान के व्यापक प्रसार को मानवकल्याण का आधार स्वीकार किया है ।

ओउम् कुर्वन्वेह कर्माणि जिजीविषेच्छतं समाः[8]।
ओउम् - तच्चक्षुर्देवहितं पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत्। पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शतं श्रृणुयाम शरदः शतं प्रब्रवामः शरदः शतमदीनाः स्याम शरदः शतं भूयश्च शरदः शतात्[9]।

उपसंहार -

यथा प्राणविना देहः यथा रश्मिं विना रविः।
प्रमाणेन विना तद्वत् दर्शनं दर्शनं न हि ॥

जिस प्रकार प्राणों के अभाव में शरीर निष्प्राण हो जाता है तथा प्रकाश के बिना सूर्य की ज्योति का अनुभव नहीं किया जा सकता, उसी प्रकार प्रमाण के अभाव में दर्शनशास्त्र अपने वास्तविक स्वरूप को प्राप्त नहीं कर सकता । प्रमाण ही वह आधार है जिसके द्वारा किसी भी दार्शनिक सिद्धान्त की सत्यता, प्रामाणिकता तथा ग्राह्यता स्थापित होती है । अतः प्रमाण दर्शन का मूलाधार एवं जीवनतत्त्व है।

भारतीय मनीषा के उन महान् ऋषियों ने, जिन्होंने आत्मा, परमात्मा, प्रकृति, उसके विकारों, कर्म, कर्मफल, पुनर्जन्म, मोक्ष तथा अन्य आध्यात्मिक तत्त्वों की सत्ता का प्रत्यक्ष या तात्त्विक अनुभव किया, मानव समाज के कल्याणार्थ आस्तिक दर्शनों का प्रतिपादन किया । इन महर्षियों ने केवल दार्शनिक सिद्धान्तों का निर्माण ही नहीं किया, अपितु मनुष्य को तत्त्वज्ञान तक पहुँचने का मार्ग भी प्रशस्त किया । इसी कारण वे तत्त्वदर्शी ऋषि तथा उनके द्वारा प्रणीत ग्रन्थ आस्तिक परम्परा के प्रतिनिधि माने गए। इसके विपरीत, जो चिन्तक आत्मा और परमात्मा जैसे तत्त्वों की सत्ता को

स्वीकार नहीं कर सके अथवा केवल कुतर्कों और शुष्क बुद्धिवाद में उलझे रहे, उनके मत एवं ग्रन्थ नास्तिक दर्शन की श्रेणी में रखे गए। इस शोधपत्र में आस्तिक दर्शनों को विशेष महत्व प्रदान करने का प्रमुख कारण यह है कि ये दर्शन केवल प्रत्यक्ष जगत् की व्याख्या तक सीमित नहीं रहते, बल्कि उन सूक्ष्म एवं अदृश्य तत्त्वों का भी ज्ञान कराते हैं जो सामान्य इन्द्रियों की पहुँच से परे हैं । जिस प्रकार दीपक का प्रकाश केवल दृश्य वस्तुओं को ही प्रकाशित नहीं करता, बल्कि उनके अस्तित्व का बोध भी कराता है, उसी प्रकार आस्तिक दर्शन प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष दोनों प्रकार के सत्य का उद्घाटन करते हैं। यही कारण है कि इन दर्शनों में वेद को सर्वोच्च प्रमाण के रूप में स्वीकार किया गया है तथा अनेक प्रसंगों में प्रत्यक्ष और अनुमान से भी अधिक महत्त्व प्रदान किया गया है ।

"प्रत्यक्षेणानुमित्या वा यस्तूपायो न विद्यते।
एवं विदन्ति वेदेन तच्च वेदस्य वेदता॥"

अर्थात् जिन विषयों का ज्ञान प्रत्यक्ष अथवा अनुमान के माध्यम से संभव नहीं होता, उनका बोध वेद के द्वारा होता है यही वेद की विशिष्टता और प्रामाणिकता है । यह वैदिक दृष्टिकोण इस तथ्य को स्पष्ट करता है कि वेद मानव ज्ञान की सीमाओं का अतिक्रमण कर उसे व्यापक एवं आध्यात्मिक आयाम प्रदान करते हैं ।

प्राचीन काल से ही गौतम, कणाद, कपिल, पतञ्जलि, जैमिनि, व्यास तथा आधुनिक युग में महर्षि दयानन्द सरस्वती जैसे महापुरुषों ने विज्ञान और दर्शन के समन्वय का आदर्श प्रस्तुत किया है । इन महान् ऋषियों ने ज्ञान के प्रत्येक क्षेत्र को मर्यादा और विवेक के साथ स्वीकार करते हुए मानवजाति के लिए ऐसा मार्ग प्रशस्त किया जो अन्ततः मोक्ष और परम कल्याण की ओर ले जाता है । उनके विचारों में विज्ञान दर्शन का विरोधी नहीं, बल्कि उसका सहयोगी और अनुपूरक है ।

मनुस्मृति का प्रसिद्ध वचन- **"वेदोऽखिलो धर्ममूलम्"**- इस तथ्य की पुष्टि करता है कि समस्त धर्म, कर्तव्य और जीवनमूल्यों का मूल स्रोत वेद हैं । इसी प्रकार **"वेदश्चक्षुः सनातनम्"** के अनुसार वेद सनातन ज्ञानरूपी नेत्र हैं, जो मनुष्य को सत्य का मार्ग दिखाते हैं । इसलिए वेद को समस्त आस्तिक दर्शनों का परम प्रमाण माना गया है । यद्यपि प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान तथा अन्य प्रमाणों को भी उनके-अपने क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त है, तथापि वेद इन सभी प्रमाणों का सर्वोच्च मार्गदर्शक स्वरूप प्रस्तुत करते हैं ।

अन्ततः यह निष्कर्ष प्राप्त होता है कि भौतिक विज्ञान की सीमित दृष्टि जब वैदिक ज्ञान की व्यापकता से संयुक्त होती है, तभी वह वास्तविक पूर्णता की ओर अग्रसर होती है । आस्तिक दर्शनों तथा वेदसम्मत प्रमाण-प्रणाली के माध्यम से मनुष्य सत्य और असत्य का विवेकपूर्वक निर्णय कर सकता है तथा जीवन के दोनों परम पुरुषार्थों-**अभ्युदय** (लौकिक उन्नति) और **निःश्रेयस** (पारलौकिक कल्याण एवं मोक्ष) की सिद्धि करने में समर्थ बन सकता है।

संदर्भग्रन्थसूची -

1. मनुस्मृति चौखमबा संस्कृत प्रतिष्ठान, 38 यू.ए.जवाहर नगर.बंगला रोड़,दिल्ली – 110007
2. वेदांतसार – श्रीसदानंदप्रणीतः,चौखम्बा विद्याभवन चौक, वाराणसी-221001
3. एकादशोपनिषद्,विजयकृष्ण लखनपाल,डब्ल्यू-77 ए, ग्रेटर कैलाश-1,नई दिल्ली 48
4. न्याय दर्शन, ढूण्ढीराजशास्त्री, चौखंबा प्रकाशन वाराणसी ,सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा, नई दिल्ली,
5. वैशेषिक दर्शन, ढूण्ढीराज शास्त्री, चौखंबा प्रकाशन वाराणसी, विजय कुमार गोविंदराम हसानंद, नई दिल्ली
6. उपनिषद, एकादशोपनिषद डॉ.सत्यव्रत सिद्धांतलंकार, डब्लू 77 ए ग्रेटर कैलाश -1, नई दिल्ली
7. तत्वज्ञान स्वामी विवेकानंद दर्शन योग महाविद्यालय, गुजरात।
8. आर्य उद्देश्यरत्नमाला महर्षि स्वामीदयानंद कृत सार्वदेशिक प्रतिनिधि सभा, नई दिल्ली

संदर्भ

1. न्याय 1/1/31
2. न्याय 1/1/31
3. न्याय.अ.1 आ.1 सू 7
4. न्याय 1/1/5
5. यजु 4/1
6. यजु 1/1/6
7. यजु 31/18
8. यजु 40/2
9. यजु